ध्वनि काव्य

'काव्यस्यात्मा ध्वनिः'[१] ऐसे ध्वन्यालोक के कथनानुसार 'काव्य की आत्मा ध्वनि है' यह विचार काव्यशास्त्र के प्रायः सभी आचार्य स्वीकार करते हैं। ध्वनि काव्य को उत्तम काव्य कहा गया है। अलङ्कारसार के प्रथमोल्लास में ध्वनि काव्य की सङ्क्षिप्त परिभाषा दी गयी है- **यद्वाच्यचमत्कारि व्यञ्जकं स ध्वनिरुत्तमं च।**[२] अर्थात् जहाँ वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ अत्यधिक चमत्कारयुक्त होता है उसे ध्वनि काव्य कहा जाता है और इसका अपर नाम उत्तम काव्य भी है। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में ध्वनि काव्य को उत्तम काव्य कहा है।[३] आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वनि का लक्षण इस प्रकार किया है-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।[४]

इसका आशय यह है कि जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अर्थ को गौण करके उस प्रतीयमान (व्यङ्ग्य) अर्थ को व्यक्त करते हैं वह काव्य विशेष सहृदय विद्वानों के द्वारा ध्वनि नाम से अभिहित किया जाता है। यहाँ जो अर्थ गौण होता है वह वाच्यार्थ है। अतः ध्वनि काव्य में व्यङ्ग्यार्थ प्रधान तथा वाच्यार्थ की अप्रधानता होती है।

रसगङ्गाधर में इसे उत्तमोत्तम काव्य की सञ्ज्ञा प्राप्त है।[५] यथा विदित ही है कि ध्वनि नामकरण वैयाकरणों से लिया गया है। वैयाकरणों ने स्फोटरूप शब्द के व्यञ्जक विभिन्न स्थानों से उच्चार्यमाण वर्ण समुदाय रूप 'घट' आदि शब्दों को ध्वनि कहा है। इन वैयाकरणों के अभिमत से सन्तुष्ट अन्य साहित्यशास्त्रियों ने भी वाच्यार्थ को उपसर्जन करने वाले व्यङ्ग्यार्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ शब्दार्थ-युगल को ध्वनि नाम दे दिया है- **बुधैर्वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग्यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यङ्ग्यव्यञ्जनक्षमस्य शब्दार्थयुगलस्य।**[६] इसी कथ्य का उल्लेख आनन्दवर्धन ने भी किया है।[७] वैयाकरणों में आचार्य पतञ्जलि तथा आचार्य भर्तृहरि ने ध्वनि शब्द का प्रयोग किया है।[८] स्फोट रूप शब्द के व्यञ्जक वर्णसमुदायात्मक शब्द को ध्वनि माना गया है। इसी ध्वनि का प्रयोग साहित्यशास्त्र में अभिप्रेत है। वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानात्मक

---

१. ध्वन्यालोक १/१

२. अलङ्कारसार, प्रथमोल्लास, पृ॰ ३

३. इदमुत्तममतिशायिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद्ध्वनिर्बुधैः कथितः। (काव्यप्रकाश १/४)

४. ध्वन्यालोक १/१३

५. रसगङ्गाधर, पृ॰ ११

६. काव्यप्रकाश, प्रथमोल्लास, पृ॰ २७

७. ध्वन्यालोक प्रथमोद्योत, पृ॰ २५-५६

८. महाभाष्य, पस्पशाह्निक, पृ॰ १९, वाक्यपदीय १/१०३

आधुनिक काव्य-शास्त्रियों के मत यथासम्भव उद्धृत करके अलङ्कारसार के कथ्य की यहाँ समुचित समीक्षा करने का प्रयास किया गया है।

व्यङ्ग्यार्थ और तात्पर्यग्रह

व्यञ्जना का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है जबकि तात्पर्या वृत्ति मानने वाले भी यही कहते हैं कि जब तक मुख्याभिप्राय विदित न हो, तब तक तात्पर्यावृत्ति का व्यापार चलता है। इस विषय में धनिक ने दशरूपक की अवलोक टीका में लिखा है-

यावत्कार्यप्रसारित्वात्तात्पर्यं न तुलाधृतम्।[१]

तात्पर्य कोई तुला पर नपी तुली वस्तु नहीं है। जब तक अभीष्टार्थ का बोध नहीं होता, तात्पर्य का व्यापार अग्रसर होता रहता है। तात्पर्य का बोध व्यञ्जनावादी व्यञ्जना के द्वारा करते हैं। लक्षणा में तात्पर्य का ज्ञान लक्षणा का सहकारी होता है परन्तु व्यङ्ग्यार्थ में तात्पर्यग्रह नियत नहीं होता है।[२] इसका तात्पर्य यह है कि लक्षणा (प्रयोजनवती) में व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति नियत हो सकती है। आर्थी व्यञ्जना में व्यङ्ग्यार्थ प्रायः अनियत रहता है। यदि कोई यह कहे कि काव्यादि में तात्पर्य विषय व्यङ्ग्य चमत्कारी होता है तो ऐसी स्थिति भी नहीं है। **'गङ्गायां घोषः'** इत्यादि में शैत्यपावनत्वादि ही व्यङ्ग्य के रूप में प्रतीत होते हैं। यहाँ **'गङ्गायां घोषः'** में केश वालुकादि की प्रतीति नहीं होती। अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि व्यङ्ग्य में तात्पर्य के नियत होने से ही केशवालुकादि की प्रतीति नहीं होती है। जैसा कि अलङ्कारसार में उद्धृत है- **स्वार्थरचितकाव्यादौ तात्पर्यविषयस्यापि व्यङ्ग्यस्य चमत्कारकारित्वादिति चेन्न। व्यङ्ग्ये तात्पर्यग्रहस्यानपेक्षायां गङ्गायां घोषः इत्यादौ शैत्यपावनत्वादिकमेव प्रतीयते न तु केशवालुकादिमत्त्वमिति नियमो न स्यादिति। तदपि न। चमत्कारिव्यङ्ग्ये तात्पर्यस्य नियतत्वेन केशबालुकादीनामप्रतीतेः।**[३]

व्यङ्ग्य भी प्रायः दो प्रकार का स्वीकार किया जा सकता है- चमत्कारिव्यङ्ग्य तथा साधारण व्यङ्ग्य। चमत्कारि व्यङ्ग्य के अन्तर्गत काव्यव्यङ्ग्य तथा रसव्यङ्ग्य की गणना होती है। रस-परिपाक चमत्कार के विना सम्भव नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने धर्मदत्त का एक श्लोक इस सन्दर्भ में उद्धृत किया है, जिससे विदित होता है कि रस में चमत्कार ही सारतत्त्व है ऐसा सर्वत्र अनुभव किया जाता है-

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।[४]

---

१. दशरूपक - अवलोक टीका, पृ० ३३८
२. अलङ्कारसार, द्वितीयोल्लास, पृ० १५
३. तदेव, द्वितीयोल्लास, पृ० १५-१६
४. साहित्यदर्पण, पृ० ७८

रहा हूँ विद्वानों का समूह यहाँ स्थित है। अत: तुम अपनी बुद्धि का आश्रय लेकर यहाँ जो उचित हो वही करना।

उपर्युक्त पद्य में 'त्वाम्', का अर्थ 'उपदेश के योग्य तुम्हें', 'अस्मि' का अर्थ 'मैं' और 'वच्मि' का अर्थ 'उपदेश करता हूँ' है। अत: यहाँ वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ में सङ्क्रमित हो गया है। यहाँ सामान्य विशेष भाव सम्बन्ध है। यहाँ वक्ता का अभिप्राय विनय प्रकाशन, आप्तता तथा आदरभाव के प्रख्यापन का उपदेश है और यही व्यङ्ग्य प्रधानतया द्योतित होने के कारण अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य ध्वनि है।[१]

(आ) अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि : यदि शब्द अपने वाच्यार्थ का अत्यन्त तिरस्कार करके अपने से भिन्न अर्थ में परिणत हो जाय तो वहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है। यहाँ पर वाच्यार्थ अनुपयुक्त होने के कारण अपने को परित्यक्त करके किसी अन्य अर्थ का बोधक होता है। जैसा कि कहा है - **वाच्यस्यानुपद्यमानत्वादत्यन्ततिरस्कृतवाच्यश्च।**[२] श्रीबालकृष्ण भट्ट ने इस ध्वनि का उदाहरण पद्य उद्धृत किया है-

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे। सुखितमास्व तत: शरदां शतम्।।[३]

उपर्युक्त पद्य में अपकारी व्यक्ति के प्रति उपकारित्व उपपन्न नहीं हो रहा है। अत: इस वाच्य अर्थ के बाधित होने पर विपरीत लक्षणा के द्वारा द्वेष्यद्वेषक भाव सम्बन्ध से अपकारिता लक्षित होती है।[४] विपरीत लक्षणा के द्वारा वाच्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत होकर अन्य अर्थ की प्रतीति कराता है। 'उपकृतम्' पद 'अपकृतम्', 'सुजनता' पद दुर्जनता' और 'सुखितम्' पद 'दु:खितम्' का बोधक बन जाता है। यहाँ स्वसाधुत्व व्यङ्ग्य है। इसके अतिरिक्त सुखपूर्वक सौ वर्ष तक जीवित रहो' इस वाक्य की परिणति 'दु:खपूर्वक तुम्हारे जैसा अपकारी मनुष्य जितनी जल्दी इस संसार को त्याग दे उतना ही उत्तम है, ऐसा व्यङ्ग्यार्थ ध्वनित होता है।

अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य तथा अन्त्यन्ततिरस्कृत वाच्य दोनों में वाच्यार्थ अविवक्षित अर्थात् अनुपपद्यमन रहता है। दोनों स्थलों पर लक्षणा द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होकर अन्य प्रतीयमान अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। अर्थान्तरसङ्क्रमित वाच्य में वाच्य अपने अर्थ का सर्वथा परित्याग न करता हुआ अन्य अर्थ में परिणत हो जाता है। अत: इसमें उपादान लक्षणा अथवा अजहत्स्वार्थावृत्ति के द्वारा

---

१. अत्र वचनसामान्यस्य प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यमानत्वादनुपयुक्तो मुख्यार्थो बाध्यो, वचनविशेषमुपदेशं लक्षयति। सामान्यविशेषभाव: सम्बन्ध:। वक्तुर्विनयप्रकाशनमाप्तत्वमादरणीयत्वं वा व्यङ्ग्यम्। (अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ॰ २१)

२. अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ॰ २१

३. तदेव ४/२

स्फुटता ही ध्वनि काव्य है।

ध्वनि के भेदोपभेद

सामान्यतया ध्वनि के दो भेद किये गये हैं -

१. अविवक्षितवाच्य ध्वनि (लक्षणामूल ध्वनि)

२. विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि (अभिधामूल ध्वनि)[१]

१. अविवक्षितवाच्य ध्वनि (लक्षणामूल ध्वनि) : इस ध्वनि-भेद में वाच्यार्थ अविवक्षित रहता है। अविवक्षितवाच्य ध्वनि में वाच्यार्थ अनुपपन्न होता है। वाच्यार्थ का अन्वय नहीं हो सकता है अत: तात्पर्य भी नहीं निकलता है। इस प्रकार वाच्यार्थ बाधित होकर लक्ष्यार्थ का बोध कराता हुआ व्यङ्ग्यार्थ का प्रकाशन करता है तो इसे लक्षणामूल ध्वनि अथवा अविवक्षितवाच्य ध्वनि कहते हैं। इसमें व्यङ्ग्य गूढ और प्रधान होता है। अविवक्षितवाच्य ध्वनि के दो भेद हैं -

(अ) अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य ध्वनि।

(आ) अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि।[२]

(अ) अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य ध्वनि : जब व्यञ्जक रूप में आने वाला वाच्यार्थ एक ऐसे अर्थ में सङ्क्रमित हो जाय, जो वाच्य तथा लक्ष्य दोनों अर्थों में समानरूपेण सम्बन्ध रखता हो और उपयुक्त भी हो तो वहाँ अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य ध्वनि होती है। यहाँ वाच्यार्थ पूर्णत: अनुपपन्न न होकर अर्थ की पूर्ति हेतु दूसरे में परिणत हो जाता है। यहाँ वाच्य के अनुपयुज्यमान होने के कारण अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यता रहती है-

वाच्यस्यानुपयुज्यमानत्वादर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य:।[३]

अलङ्कारसार में इस ध्वनि का उदाहरण-पद्य प्रस्तुत किया गया है-

त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायोऽत्र तिष्ठति।
आत्मीयां मतिमादाय युक्तमत्र विधेहि तत्।।[४]

विद्वत्सभा में प्रवेश करने वाले किसी शिष्य के प्रति किसी विद्वान् की उक्ति है कि मैं तुमसे कह

---

१. भेदौ ध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाभिधामूलौ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च।। (साहित्यदर्पण ४/२)

२. अर्थान्तरे सङ्क्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम् ।
अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधा मतम् ।। (ध्वन्यालोक २/१)

३. अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ० २१

४. तदेव ४/१

ने रसों के उदय, शान्ति, सन्धि तथा शबलत्व का निषेध करते हुए कहा है कि जब स्थायिभाव विभावादि से संवलित हो जाता है तो रस की अनुभूति होने लगती है। ऐसी स्थिति में अन्य विषयों का ज्ञान कैसे सम्भव है? अतः रसशान्ति, रसोदय, रससन्धि तथा रसशबलता नहीं हो सकती है।[1] भाव के साथ इनका सम्बन्ध हो सकता है।[2] अतः भावशान्ति आदि को स्वीकार करना चाहिए रसशान्त्यादि को नहीं। इस प्रकार रस ध्वनि तथा भावध्वनि के अनेक भेद होने पर भी रसादिध्वनि को काव्यशास्त्रियों ने एक भेद ही अङ्गीकार किया है। यदि इन सब के भेदोपभेद किये जायेंगे तो निश्चप्रच रसादि ध्वनि के अनन्त भेद हो जायेंगे।[3] अतः रसादि ध्वनि का एक भेद स्वीकार करना ही श्रेयस्कर है।

(ख) लक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य : घण्टा वादन के अनन्तर जो अनुरणन रूप प्रतिध्वनि होती है, इसमें घण्टे का शब्द और अनुरणन का क्रम जैसे स्पष्टतया संलक्षित होता है वैसे ही जहाँ वाच्य और व्यङ्ग्य के स्पष्ट क्रम का पूर्वापर ज्ञान हो तो वहाँ संलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि होती है-

घण्टावादनानन्तरमनुस्वानस्येव संलक्ष्यः क्रमो यस्य व्यङ्ग्यस्य तादृशं व्यङ्ग्यं यत्र स संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो ध्वनिः।[4]

आचार्य मम्मट ने संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य के विषय में कहा है कि अनुस्वान के सदृश संलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्य नामक जो ध्वनि है वह शब्दशक्त्युत्थ, अर्थशक्त्युत्थ तथा उभयशक्त्युत्थ भेद से तीन प्रकार की कही गयी है।[5]

अलङ्कारसार में भी इस ध्वनि के तीन भेद बतलाये गये हैं-

(१) शब्दशक्तिमूलानुरणनरूपव्यङ्ग्य।

(२) अर्थशक्तिमूलानुरणनरूपव्यङ्ग्य।

(३) उभयशक्तिमूलानुरणनरूपव्यङ्ग्य।[6]

---

१. रसस्य हि न शान्त्युदयौ सम्भवतः तस्य नित्यत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्, नापि सन्धिशबलते सम्भवतः, स्थायिभावस्य विभावाद्यसंवलने रसतयानभिव्यक्तेस्तत्संवलने तु रसतात्पर्यावसानेन विगलितवेद्यान्तरत्वात्।
(काव्यदर्पण, पृ० १३७)

२. काव्यदर्पण, पृ० १३७

३. अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ० ३६

४. अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ० ३६-३७

५. अनुस्वानामसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्थितिस्तु सः।
शब्दार्थोभयशक्त्युत्थत्रिधा स कथितो ध्वनिः।। (काव्यप्रकाश ४/३७-३८)

६. शब्दशक्तिमूलानुरणनरूपव्यङ्ग्यार्थशक्तिमूलानुरणनरूपव्यङ्ग्योभयशक्तिमूलानुरणनरूपव्यङ्ग्यभेदात्।

अर्थान्तर का बोध होता है। अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य में वाच्यार्थ अपने अर्थ का सर्वथा परित्याग कर देता है और जहत्स्वार्थावृत्ति से अर्थान्तर की प्रतीति कराता है।

२. विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि (अभिधामूल ध्वनि) : विवक्षितान्यपर वाच्य ध्वनि को विवक्षितवाच्य ध्वनि भी कहते हैं क्योंकि यहाँ वाच्य विवक्षित होता है। इसमें वाच्यार्थ (अभिधाशक्ति द्वारा) की प्रतीति के पश्चात् व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है अत: इसे अभिधामूलकध्वनि सञ्ज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। यहाँ अन्यपरत्व का अभिप्राय व्यङ्ग्यार्थ के प्रति वाच्यार्थ की उपसर्जनीभूतता है- **अन्यपरत्वं तु व्यङ्ग्यार्थोपसर्जनीभूतत्वम्**[1] विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि के दो भेद बतलाये गये हैं-

(क) अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य (असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य)

(ख) लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य (संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य)[2]

आचार्य मम्मटादि[3] काव्यशास्त्रियों ने भी विभाजन की सीमा यही रखी है। इस अभिधामूलक ध्वनि में अभिधावृत्ति से पदार्थों की उपस्थिति के तत्क्षण व्यञ्जना वृत्ति से रसादि का बोध हो जाता है।

(क) अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य : जहाँ वाच्य तथा व्यङ्ग्य में क्रम होते हुए भी परिलक्षित नहीं होता है वहाँ अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि होती है। इस ध्वनि में वाच्य और व्यङ्ग्य का क्रम तो अवश्य रहता है परन्तु झटिति प्रतीति के कारण वह लक्षित नहीं होता है। जैसे सौ कमल की पंखुड़ियों पर सूची से एक साथ भेदन करने पर प्रत्येक दल से अपर दल के भेदने में क्या समय लगा, यह सूक्ष्मता के कारण दृष्टिगत नहीं होता है- **तत्तु नियतपूर्ववर्त्तित्वघटितमिति क्रमोऽस्ति तथाप्युत्पलपत्रशत-व्यतिभेदवत्काल-सौक्ष्म्यान्न लक्ष्यते।**[4]इस भेद के अन्तर्गत रसादि ध्वनियां आती हैं। रस शब्द में आदि शब्द के उल्लेख से केवल रस ही नहीं अपितु भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलत्व इन सभी का ग्रहण अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य के अन्तर्गत किया जाता है-

तत्र रसभावरसाभासभावाभासभावशान्तिभावोदयभावसन्धि-
भावशबलत्वानि वाक्यार्थप्रधानान्यलङ्कार्याण्यक्रमाणि।[5]

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में उपर्युक्त रसादि ध्वनियों का समुल्लेख किया है।[6] आनन्दवर्धन ने इन्हें असंलक्ष्यक्रम नाम से अभिहित किया है-

---

१. अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ॰ २१

२. अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यश्च। (अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ॰ २१)

३. कोऽप्यसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रम: पर:। (काव्यप्रकाश ४/२५)

४. अलङ्कारसार, चतुर्थोल्लास, पृ॰ २१

५. तदेव, चतुर्थोल्लास, पृ॰ २१

६. रसभावतदाभासभावशान्त्यादिरक्रम:। भित्रो रसाद्यलङ्कारादलङ्कार्यतया मत:।। (काव्यप्रकाश ४/२६)